भिन्नता को स्वीकार करना सीखना

शेफ़ाली त्रिपाठी मेहता

तीन दशक पहले, विकलांगों के सशक्तिकरण के लिए काम करने वाली संस्था 'आरुषि' के पहले दो दृष्टिहीन बच्चों को जब एक (मुख्यधारा के) स्कूल में दाख़िला मिला तो, दोनों बच्चे सुबह की सभा और खेलों के पीरियड के दौरान कक्षा में ही रहते थे। उनसे कहा जाता कि तुम भला वहाँ जाकर क्या करोगे?

समावेशी शिक्षा की परिभाषा, स्कूल/शिक्षा तक सबकी पहुँच पर ध्यान केन्द्रित करती है, जो कि उचित भी है क्योंकि समावेशन की राह में यह सबसे बड़ी रुकावट है, लेकिन उसके परे भी शारीरिक और मानसिक विकलांगता को देखने समझने का एक पूरा सामाजिक लोकव्यवहार है। हमारी लोकप्रिय फ़िल्में और साहित्य या तो त्याग की भावना को बढ़ावा देते हैं जिसमें कि एक विकलांग हीरो जानबूझकर एक खलनायक की तरह पेश आता है जिससे कि वह प्रेमिका की नज़रों से गिर जाए और एक शारीरिक रूप से सक्षम व्यक्ति के रास्ते से हट जाए। या फिर फ़िल्में और साहित्य मोटापे, हकलाने, नींद में चलने, ज़्यादा खाने, या धीरे-धीरे बोलने या सोचने को एक हास्य के विषय के रूप में पेश करते हैं। इसलिए विकलांग बच्चों को सिर्फ़ एक मुख्यधारा के स्कूल में दाख़िला मिल जाने से ही उनका अलगाव ख़त्म नहीं हो जाता बल्कि कई मायनों में यह अलगाव को बढ़ा भी सकता है।

जब हम विकलांग बच्चों के समावेशन की बात करते हैं तो हम हमेशा उन्हीं के नज़रिए से ही सोचते हैं - कि वे कैसा सोचते या क्या अनुभव करते हैं। लेकिन उनके और बाकियों के बीच की इस दूरी को प्रभावी ढंग से ख़त्म करने के लिए हमें यह समझना होगा कि जो बच्चे विकलांग नहीं हैं, उनके विचार क्या हैं और वे किन बातों को सामान्य मानते हैं।

बढ़ती हुई संवेदनाओं के इस दौर में जो बातें हमें वाजिब तौर पर भेदभावपूर्ण लगती हैं, अगर उन्हें हम अपने भीतर के पूर्वाग्रहों को देखें तो वे केवल लोगों के बीच अन्तर करने में मदद करती नज़र आएँगी। जब हम कहते हैं कि "तुम्हारी क्लास में वह लम्बी/गोरी/लम्बे बालों वाली/ ख़ूबसूरत-सी लड़की कौन है?" तो यह केवल विशेषण नज़र आते हैं, लेकिन यह बात कि "क्या तुम अपने जन्मदिन पर उस नाटे/मोटे/काले लड़के को बुला रहे हो?", सरासर अपमानजनक है। हो सकता है कि यह हमारा लोगों को पहचानने का तरीक़ा ही हो, लेकिन ऐसा करते हुए, दुर्भाग्य से हम जाति, वर्ग, धर्म के अलावा समाज को बाँटने वाली अन्य सैकड़ों बातों की ओर भी इशारा करते हुए से लगते हैं। हमारे भीतर छुपे हुए पूर्वाग्रह हमारी भाषा और हाव-भाव से प्रगट होते रहते हैं और बच्चे आस-पास के इन सारे मौखिक और ग़ैर-मौखिक संकेतों को अचेतन रूप से ग्रहण करते रहते हैं और आत्मसात भी। वे हमारे पूर्वाग्रहों को सूंघ लेते हैं और आडम्बरों के पार देख पाते हैं। इसके परिणामस्वरुप, जो लोग हमारे सामाजिक मानदण्डों या शरीर और दिमाग़ की सम्पूर्णता के जुनून के हिसाब से खरे नहीं उतरते उनका मज़ाक उड़ाया जाता है या फिर उन्हें आक्रामक व्यवहार का सामना करना पड़ता है।

तो मैंने कुछ बच्चों से इस बारे में बात की कि वे विकलांग बच्चों/लोगों के बारे में क्या सोचते हैं। पहली बात तो यह सामने आई कि जिन पब्लिक स्कूलों में वे पढ़ते हैं वहाँ इस तरह के कोई बच्चे हैं ही नहीं जो विकलांग हों। उनमें से कोई भी बच्चा कभी किसी विकलांग बच्चे से मिला ही नहीं था, हालाँकि ब्रेल या संकेत भाषा के बारे में उन्हें पता था, और उन्हें लगता था कि यह भाषाएँ सीखकर वे दूसरों की 'मदद' कर पाएँगे। उन्हें यह भी लगता था कि स्कूलों में वे सुविधाएँ नहीं हैं जो विकलांग बच्चों के लिए होनी चाहिए। दस साल की एक बच्ची ने कहा कि शुरू-शुरू में तो उसे एक विकलांग बच्चे के साथ कुछ अटपटा-सा लगेगा, लेकिन एक बार जब वे दोस्त बन जाएँगे तो फिर झिझक दूर हो जाएगी। उनमें से एक को तो इस बात की चिन्ता हो रही थी कि कुछ बच्चे "उनके बारे में कुछ अशिष्ट बातें बोल सकते हैं।" हालाँकि उन्हें यह लगता था कि शायद थोड़े अलग तरह से पर, विकलांग बच्चे भी वे सारा कुछ कर सकते थे जो वे कर पाते हैं, लेकिन बार-बार वे मदद शब्द का इस्तेमाल कर रहे थे। फिर भी जिस तरह से वे विकलांगता की बात कर रहे थे उसमे किसी तरह का कोई तरस का पुट नहीं था, बल्कि एक सहानुभूति की भावना थी।

जब मैंने उनसे पूछा कि क्या विकलांग बच्चों को किसी ख़ास तरह के स्कूल में ही भेजा जाना चाहिए तो पाँचवी क्लास की एक बच्ची ने एक मिनट भी सोचे बिना झट से जवाब दिया कि अगर उन्हें किसी ख़ास स्कूल में भेजा जाता है तो फिर वे "हमारे जैसी कई चीज़ों को नहीं सीख पाएँगे।" इन बच्चों में

जागरूकता और स्वीकार्यता की कमी नहीं थी, अगर समझ में कहीं कोई कमी थी तो उसकी वजह यही थी कि उन्हें कभी किसी विकलांग बच्चे या व्यक्ति को क़रीब से जानने का मौका ही नहीं मिला था।

यह दिलचस्प बात है कि जिस तरह का व्यवहार सार्वजनिक जगहों पर विकलांग लोगों के साथ होता है और जिन मुश्किलों से उन्हें गुज़रना पड़ता है, उससे यही झलकता है कि बड़ी उम्र के लोगों – यानी स्कूल के प्रबन्धक, अध्यापक, रोज़गार देने वाले, सरकारी कर्मचारियों और सामान्यतः लोगों के उनके बारे में विचार कुछ ज़्यादा ही कठोर हैं। उनकी यह अज्ञानता ग़लत सूचनाओं/तथ्यों पर बनी धारणाओं पर आधारित होती है जो कि गहरे पैठ चुकी है।

अब मैं उन दो नेत्रहीन बच्चों की मिसाल पर वापिस आती हूँ, दूसरे बच्चों के साथ उनके समावेशन की कहानी बहुत ही दिलचस्प है। असल में वे दोनों ही शतरंज के मंझे हुए खिलाड़ी थे, और जब उनके साथियों ने उनके साथ खेलना शुरू किया तो उन बच्चों को, जो विकलांग नहीं थे, यह बात एकदम स्पष्ट हो गई कि जितनी उन्होंने कल्पना कर रखी थी, वे दोनों, उससे कहीं बेहतर कर सकते थे। धीरे-धीरे उन्होंने यह भी पाया कि वे दोनों लिख और पढ़ सकते थे (ब्रेल का इस्तेमाल करते हुए); और यह भी कि वे सिर्फ़ पढ़ाई-लिखाई में ही नहीं बल्कि हँसी-मज़ाक में भी वे दोनों बहुत अच्छे थे। धीरे-धीरे जब उनमें दोस्ती हो गई तो फिर यह स्वाभाविक ही था कि जल्द ही वे दोनों लड़के, बाक़ी बच्चों के साथ खेल के मैदान में नज़र आने लगे और स्कूल की दूसरी सारी गतिविधियों में भी हिस्सा लेने लगे।

अन्य स्कूलों के बच्चे आरुषि में संकेत भाषा सीखते हुए

जब हम विकलांग लोगों के (मुख्यधारा में) समावेशन की बात करते हैं, तो सिर्फ़ उन चीज़ों की बात नहीं होनी चाहिए जो वे नहीं कर पाते, बल्कि उन चीज़ों का ज़िक्र होना चाहिए जिन्हें वे कर सकते हैं, भले ही वे (थोड़ा या पूरी तरह) अलग तरीक़े से ही क्यों न हो। और फिर यह सारा कुछ बिलकुल स्वाभाविक और सहजता से होना चाहिए। इस बात को ध्यान में रखते हुए कि अभी बस एक दशक पहले तक विकलांग बच्चे उन स्कूलों में नहीं जा पाते थे जहाँ बाक़ी सब बच्चे जाते हैं, वे या तो विशेष स्कूल जाते या फिर किसी भी स्कूल में नहीं, हम कह सकते हैं कि भले ही बदलाव छोटा और बिखरा हुआ है पर हुआ ज़रूर है और इस बदलाव को स्वीकार करने में अभी भी कोई बहुत देर नहीं हुई है।

आरुषि ने समावेशन को बढ़ावा देने के लिए, और ख़ासतौर पर बच्चों में, कई नए-नए तरीक़ों का प्रयोग किया है। उन्होंने स्कूल अध्यापकों के क्षमतासंवर्धन से शुरुआत की, उन्हें ब्रेल और संकेत भाषाएँ सिखाईं और साथ-ही-साथ विकलांगता के बारे में उन्हें जागरूक और संवेदनशील बनाया ताकि वे आसानी के साथ विकलांग बच्चों को अपनी कक्षाओं में शामिल कर सकें। इसे आगे बढ़ाते हुए संस्था ने मध्यप्रदेश राज्य पाठ्यपुस्तक निगम द्वारा पहली से लेकर सातवीं तक की सारी पाठ्यपुस्तकों में एक ऐसा पेज जुड़वाने में कामयाबी हासिल की जिसमें विभिन्न तरह की विकलांगता के बारे में जानकारी दी गई है और यह भी बताया गया है कि किस तरह से ऐसे बच्चों को स्कूलों का एक सहज अंग बनाया जा सकता है।

अन्य स्कूलों के बच्चे ब्रेल को समझते हुए

कई सालों से *आरुषि* ने इस बात को प्रोत्साहन दिया है कि स्कूलों में कक्षा के बाहर विकलांग और दूसरे बच्चों को सहज और प्रभावशाली तरीक़े से एक-दूसरे के क़रीब कैसे लाया जाए और उनमें मेल-जोल बढ़ाया जाए। *आरुषि* के बच्चे अपने हमउम्र बच्चों से मिलने के लिए उनके स्कूलों में जाते हैं, और दूसरे नियमित या मुख्यधारा के स्कूली बच्चों को उन बच्चों से मेल-जोल के लिए *आरुषि* में आमंत्रित किया जाता है, जो *आरुषि* में अलग-अलग थेरेपी के लिए, स्कूल रेडीनेस प्रोग्राम के लिए, या अन्य व्यवसायिक थेरेपी और चलने-फिरने की ट्रेनिंग के साथ-साथ ब्रेल, कम्प्यूटर और संकेत भाषा सीखने आते हैं।

ब्रेललिपि की मदद से कहानी सुनाने का एक सत्र

इस तरह की विज़िट की शुरूआत सेंटर के भ्रमण से शुरू होती है। विद्यार्थी कक्षाओं में जाकर ऑटिज्म, सेरिब्रल पाल्सी, नेत्रहीनता, बहरेपन और कम दृष्टि जैसी चुनौतियों वाले बच्चों से मिलते हैं। शहर के विभिन्न स्कूलों से आने वाले यह बच्चे *आरुषि* के बच्चों से मिलते-जुलते हैं, और उन्हें पढ़ते-लिखते, ड्राइंग और अन्य शिल्प-कलाओं का अभ्यास करते, खेलते-कूदते, मस्ती और शारीरिक व्यायाम करते हुए देखते हैं। यह इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि वे बच्चे जो इस तरह की चुनौतियों का सामना नहीं कर रहे, यही मानकर चलते हैं कि ऐसी चुनौतियों वाले बच्चे एक मुश्किल, उदासी भरा और अधूरा जीवन ही जीते हैं। जब वे उन्हें हँसी-मज़ाक करते और चुटकले सुनाते हुए देखते हैं तो उन्हें सचमुच ही बहुत हैरानी होती है। इससे वे बहुत कुछ सीखते हैं। वे उन्हें चलते-फिरते और बिना किसी की मदद से अपने सारे काम करते हुए देखते हैं। सभी बच्चे मिलकर खेलते हैं और गीत गाते हैं। वे मिले-जुले समूहों में एक-दूसरे के साथ क्विज़ प्रतियोगिता में भी भाग लेते हैं।

विज़िट पर आए विद्यार्थी यह देखते हैं कि किस तरह से विकलांग बच्चे नई-नई चीज़ों को सीखने और संवाद करने के लिए ब्रेल और संकेत भाषा का इस्तेमाल करते हैं। वे ऑडियोबुक सुनते हैं और नेत्रहीन बच्चों को हैरी पोटर या ऐसी ही किसी कहानी को उसके ब्रेल संस्करण में से पढ़ते हुए देखते हैं! ब्रेल और संकेत भाषा से उनकी एक शुरुआती जान-पहचान भी करवाई जाती है। बहुत छोटी उम्र के बच्चे, जो अभी प्राथमिक कक्षाओं में ही हैं, इन बुनियादी बातों को सीखने में गहरी रूचि दिखाते हैं, और बहुत तेज़ी से उन्हें सीख भी जाते हैं। *आरुषि* में कुछ समय बिताने के बाद जब उनसे यह पूछा जाता है कि क्या आरुषि के बच्चों और उनमें कोई फ़र्क़ है, तो वे कहते हैं कि हाँ फ़र्क़ तो है लेकिन बस इतना ही कि वे नोटबुक और पेंसिल लेकर स्कूल जाते हैं जबकि एक नेत्रहीन बच्चा एक ब्रेल स्लेट और स्टाइलस लेकर जाता है।

स्कूल की एक लड़की ने जब एक नेत्रहीन विद्यार्थी को ब्रेल में छपी किताब से कहानी पढ़कर सुनाते हुए देखा तो वह भावुक हो गई। उसने बोला कि, "मैं बस हैरानी से भरी देख रही थी। यह बच्चे जो देख नहीं सकते कितने प्रसन्न और ख़ुशदिल हैं। और हम, जो देख सकते हैं, वे टीवी ठीक से नहीं चल रहा जैसी छोटी-छोटी बातों पर शिकायत करते हैं।"

चूँकि *आरुषि* के बच्चों को बिना किसी अपवाद के, मुख्यधारा के स्कूलों में दाख़िले के लिए तैयार करवाया जाता है और उन्हें वहाँ दाख़िला मिलता भी है, इसलिए ज़रूरी है कि उन्हें वहाँ ऐसा माहौल मिले जिसमें उनका स्वागत हो, उन्हें स्वीकार किया जाए, और एक ऐसा माहौल जहाँ वे अजनबी महसूस न करें। यदि उनके सहपाठी इस बात को समझ सकें कि वे भी उन्हीं की तरह लिख-पढ़ सकते हैं और अपनी बात समझा सकते हैं,बातचीत कर सकते हैं, भले ही वे उसके लिए दूसरे माध्यम का इस्तेमाल करते हों, तो विकलांग बच्चों की मुख्यधारा में घुलने-मिलने की सम्भावनाएँ कहीं बेहतर हो सकेंगी।

शेफ़ाली त्रिपाठी मेहता लर्निंग कर्व की सह-सम्पादक और यूनिवर्सिटी प्रैक्टिस कनेक्ट की सम्पादक हैं। वे अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी के कई उपक्रमों में सम्पादक के तौर पर अपना योगदान देती हैं। वे तीस साल से भी ज़्यादा समय तक *आरुषि* में स्वयंसेवक के तौर पर काम करती रही हैं। उनसे *shefali.mehta@apu.edu.in* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : बलराम बोधि **पुनरीक्षण** तथा **कॉपी एडीटिंग :** स्वाति भदौरिया